परिशिष्ट

समर्पणमूर्ति श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

पूज्य बाबूजी (रस-सिद्ध-संत परम पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के नित्य-लीलामें लीन हो जानेके बाद 'कल्याण'के सम्पादनका भार जिनके ऊपर आया, उन समर्पण-मूर्ति पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके व्यक्तित्वकी गरिमाकी झलक प्रस्तुत कर सकना मेरी क्षमताके बाहर है। गोस्वामीजीके समर्पण-भावका जैसा स्वरूप और जो स्तर था, वह जब मन और बुद्धिके लिये ही अगम्य है, तब भला वाणी उसका वर्णन कैसे कर सकती है? उनके मनको, मस्तिष्कको और जीवनको क्षुद्रता अथवा अभद्रता कभी छलसे भी स्पर्श न कर सकी। 'मति अकुंठ हरि भगति अखंडा'के साकार रूप थे गोस्वामीजी।

श्रद्धेय श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एम.ए., शास्त्री, का जन्म सं.१९५७ वि. आषाढ़ कृष्ण ९ गुरुवार, २१ जून १९०० ई. को बीकानेरमें तैलंग ब्राह्मण कुलमें हुआ था। कई पीढ़ी पहले इनके पूर्वज दक्षिण भारतके तेलंगाना प्रदेशसे आकर राजस्थानके बीकानेर नगरमें बस गये थे। राजाश्रय मिलनेके कारण ही इनके पूर्वज बीकानेर आये थे। अब

तो तैलंग गोस्वामी-गणके अनेक परिवार बीकानेरमें बसे हुए हैं। भक्तिमती श्रीचन्द्रकलादेवी तथा श्रीव्रजलालजी गोस्वामीको इनके माता-पिता कहलानेका गौरव प्राप्त हुआ। सन् १९१६ में हाईस्कूलकी परीक्षा उत्तीर्ण करके आप वाराणसी चले आये और क्वीन्स कालेजमें अँगरेजी, दर्शन शास्त्र तथा संस्कृतका अध्ययन करने लगे। यहाँ पढ़ते समय महामहोपाध्याय पं.श्रीगोपीनाथजी कविराजका विशेष सामीप्य और संरक्षण मिला। क्वीन्स कालेजका अध्ययन पूर्ण करके आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे सन् १९२२ में संस्कृतकी एम.ए. परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। तदुपरान्त कुछ समयके लिये आपने महामना पं.श्रीमदनमोहनजी मालवीयके निजी सचिवके रूपमें कार्य किया। वाराणसीसे बीकानेर वापस आनेके बाद चार वर्षतक प्रधानाध्यापकके रूपमें कार्य करते रहे। फिर छः वर्षोंतक बीकानेर राज्यके राजनैतिक विभागमें कार्य किया और राज्यके प्रधान दीवान आदरणीय श्रीमन्नूभाई शाहके निजी सचिव रहे।

सन १९२८ ई. के प्रारम्भमें गोस्वामीजीकी सर्व प्रथम भेंट पूज्य बाबूजीसे हुई। बाबूजीके भक्तिपूर्ण संत जीवनका परिचय देकर उनसे गोस्वामीजीकी भेंट करानेका श्रेय आदरणीय श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीको है। भगवन्नामके प्रचार तथा सत्संगके उद्देश्यसे विभिन्न स्थानोंमें भ्रमण करते हुए बाबूजी १३ जनवरी, १९२८ को बीकानेर पधारे थे। वहाँ बाबूजीके नेतृत्वमें नगर-संकीर्तनका आयोजन हुआ और उनका प्रवचन हुआ। गोस्वामीजीने यह प्रवचन सुना और उनका मन बड़ा प्रभावित हुआ। गोस्वामीजीका अध्ययन और ज्ञान विशद था। इस प्रवचनको सुनकर उन्हें लगा कि बाबूजी द्वारा जो कुछ भी कहा गया है, उसका आधार अनुभव है। मात्र पढ़ी-पढ़ायी अथवा सुनी-सुनायी बातोंके आधारपर ऐसा प्रवचन अथवा प्रतिपादन किया ही नहीं जा सकता।

इस प्रवचनको सुननेके बाद गोस्वामीजीका मन बाबूजीके प्रति आकृष्ट होने लगा। बाबूजी बीकानेरमें दो दिन तक रहे। इन दो दिनोंमें गोस्वामीजी बाबूजीके पास घंटों बैठे रहते तथा उनके साथ भगवद्विषयक चर्चा करते रहते। गोस्वामीजीके मनपर इस प्रथम समागमकी गहरी छाप पड़ी। इस छापके फलस्वरूप गोस्वामीजी लालसान्वित हो उठे कि बाबूजीके निकट सम्पर्कमें कुछ दिन रहना चाहिये। यह इच्छा बढ़ती ही चली गयी।

निकट सम्पर्ककी लालसा बहुत बढ़ जानेपर गोस्वामीजी सन् १९२९ ई. के ग्रीष्म कालमें बीकानेरसे गोरखपुर आये और बाबूजीके पास लगभग डेढ़ मास रहे। इस डेढ़ मासकी अवधिमें बाबूजीकी दिनचर्या और उनके जीवनको अति निकटसे देखनेका और उनके विचारोंको सतत सुननेका अवसर मिला। एक कहावत है– 'ज्यों-ज्यों कसे, त्यों-त्यों बसे'। गोस्वामीजी बाबूजीको जितना- जितना ही कसौटीपर कसते चले गये, उतना-उतना ही बाबूजी गोस्वामीजीके मनमें बसते चले गये। गोस्वामीजीको लगा कि बाबूजीका जीवन साधारण नहीं है। बाबूजीके भगवद्विषयक विचार, भगवत्सम्बन्धी अनुभव एवं भगवन्मय जीवन उनके असाधारण एवं लोकोत्तर व्यक्तित्वके परिचायक हैं। बाबूजीके लोकोत्तर व्यक्तित्वका प्रभाव गोस्वामीजीपर ऐसा पड़ा कि उन्होंने दस-पन्द्रह दिनके अन्दर ही एक महान् निर्णय ले लिया। वह निर्णय था सब कुछ छोड़कर बाबूजीके चरणोंके समीप रहनेका तथा शेष जीवन इन्हींकी छत्र-छायामें व्यतीत करनेका। यह जीवनका महत्त्वपूर्ण मोड़ था। अपने जीवनके सम्बन्धमें इस महत्त्वपूर्ण निर्णयको क्रियान्वित कर लेना सहज कार्य नहीं था। घरपर पूज्या माताजी और पूज्य पिताजी थे। उनकी आज्ञा अपेक्षित थी। डेढ़ मासके बाद गोस्वामीजी गोरखपुरसे बीकानेर वापस आ गये। बाबूजीके पास रहनेका जो निर्णय गोस्वामीजीने लिया था, तदनुसार कार्य करनेमें बड़ी कठिनाइयाँ आयीं, पर अध्यात्म-पथके सच्चे पथिकको भला कौन निश्चयसे विरत कर पाता है? सारी कठिनाईयोंको हल करते हुए सन् १९३३ ई. में गोस्वामीजी अपने संकल्पको पूर्ण कर पाये।

गोस्वामीजीके कोई सन्तान नहीं थी। वे अपनी धर्मपत्नीके सहित सन् १९३३ ई. में बीकानेरसे गोरखपुर चले आये स्थायी रूपसे रहनेके लिये। गोस्वामीजीका सहयोग पाकर बाबूजीको बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। समाजमें भगवद्भक्ति एवं भगवन्नामका प्रचार करनेके लिये तथा जन-जीवनमें आध्यात्मिकता एवं नैतिकताकी प्रतिष्ठाके लिये बाबूजी सतत प्रयत्नशील थे और इस लक्ष्यकी ओर आगे बढ़नेके लिये अन्य अनेक साधनोंके साथ-साथ सबसे सशक्त सहायिका थी 'कल्याण' मासिक पत्रिका। 'कल्याण' मासिक पत्रिका केवल हिन्दीमें निकलती थी। गोस्वामीजीके शुभागमनसे अब अँगरेजी भाषामें भी एक मासिक पत्रिका

निकलने लगी। इसका नाम था 'कल्याण-कल्पतरु'। 'कल्याण-कल्पतरु'का भी उद्देश्य वही था, जो 'कल्याण'का था, बस, अन्तर केवल भाषाका था। गोस्वामीजी हिन्दी, संस्कृत एवं अँगरेजीके प्रकाण्ड पण्डित थे। इन तीनों भाषाओंके व्याकरणपर गोस्वामीजीका असाधारण अधिकार था।

गोस्वामीजीके सम्पादकत्वमें 'कल्याण-कल्पतरु'के निम्नलिखित विशेषांक प्रकाशित हुए।

१- The God Number (ईश्वरांक)
२- The Gita Number (गीतांक)
३- The Vedant Number (वेदांतांक)
४- The Krishna Number (श्रीकृष्णांक)
५- The Divine Name Number (भगवन्नामांक)
६- The Dharma Tattva Number (धर्म-तत्त्वांक)
७- The Yoga Number (योगांक)
८- The Bhakta Number (भक्तांक)
९- The Krishna Leela Number (श्रीकृष्णलीलांक)
१०- The Cow Number (गो-अंक)

उपरोक्त विशेषांक तो प्रकाशित हुए ही, इनके अतिरिक्त 'कल्याण-कल्पतरु'के विशेषांकके रूपमें श्रीगीता-तत्त्व-विवेचनी, श्रीरामचरितमानस, श्रीमद्भागवतमहापुराण तथा वाल्मीकि रामायणके अँगरेजी अनुवाद क्रमशः प्रकाशित होते रहे। खेदके साथ लिखना पड़ रहा है कि वाल्मीकि रामायणका अनुवाद पूर्ण करनेके पहले ही गोस्वामीजी हमारे बीचसे चले गये। वाल्मीकि रामायणके युद्ध काण्डका अँगेरजी अनुवाद कर चुकनेके बाद उन्होंने उत्तर काण्डका अनुवाद-कार्य अपने हाथमें लिया। उत्तर काण्डके लगभग एक-तिहाई अंशका अनुवाद वे कर पाये थे कि रुग्णताने उनको घेर लिया। यह अस्वस्थता उनके जीवनके लिये विघातक सिद्ध हुई। फिर तो उत्तर काण्डके शेष भागका अनुवाद हो ही नहीं पाया।

'कल्याण-कल्पतरु'का प्रकाशन सन् १९३४ ई. से प्रारम्भ हुआ था। गोस्वामीजी 'कल्याण-कल्पतरु' के प्रधान सम्पादक तो थे ही, 'कल्याण' हिन्दी मासिक पत्रिकामें भी बाबूजीको सहयोग देने लगे और

सन् १९३९ ई. से 'कल्याण'के सहायक सम्पादकके रूपमें उनका नाम छपने लगा। बाबूजीके नित्यलीलामें लीन हो जानेके उपरान्त 'कल्याण'के सम्पादनका कार्य-भार गोस्वामीजीपर ही आ गया। अब 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु', दोनों पत्रिकाओंका कार्य गोस्वामीजीको सँभालना पड़ता था। गोस्वामीजीके सम्पादकत्वमें 'कल्याण' के तीन विशेषांक प्रकाशित हुए– श्रीरामांक, श्रीविष्णु-अंक और श्रीगणेशांक। सामग्री और सुसज्जा की दृष्टिसे ये तीनों विशेषांक ठीक वैसे ही थे, जैसे बाबूजीके सम्पादकत्वमें अनेक विशेषांक प्रकाशित होते रहे हैं। गोस्वामीजीके सम्पादकत्वमें भी 'कल्याण' की गौरवमयी परम्परा और आध्यात्मिक गरिमा अक्षुण्ण रही।

बाबूजीके महाप्रस्थानके उपरान्त 'कल्याण'के सम्पादनका भार सँभालनेपर उन्होंने जो निवेदन लिखा, उसमें उनके हृदयका एक अत्यन्त उज्ज्वल रूप देखनेको मिलता है। निवेदनमें उन्होंने लिखा था– ''परम भागवत श्रीपोद्दारजीके पार्थिव देह त्यागकर नित्यलीलालीन हो जानेसे 'कल्याण'के सम्पादनका भार मेरे दुर्बल कंधोंपर आ पड़ा है, जिसे वहन करनेमें मैं अपनेको सर्वथा अक्षम अनुभव करता हूँ। अबतक तो 'कल्याण' का सारा भार श्रीपोद्दारजी अकेले ही वहन करते थे। मेरा नाम तो उन्होंने शीलवश मुझे प्रोत्साहन देने और मेरी सम्मानकी वासनाको पूर्ण करनेके लिये ही अपने गौरवशाली नामके साथ जोड़ दिया था। मेरे अन्दर न तो साधनाका बल है, न आध्यात्मिक अनुभव है, न त्याग है, न तप है, न दैवी सम्पदा है, न प्रौढ़ विचार है, न वैसा शास्त्रोंका अध्ययन एवं मनन है और न मेरी लेखनीमें ही शक्ति है। ऐसी दशामें 'कल्याण' जैसे पत्रके सम्पादकमें जैसी और जितनी योग्यता होनी चाहिये, उसका मैं अपने अन्दर सर्वथा अभाव देखता हूँ। 'कल्याण'की सेवाका मैं अपनेको सर्वथा अनधिकारी मानता हूँ। पर परम श्रद्धेय श्रीभाईजी जैसे परम स्वजनके प्रति अपने कर्तव्य-निर्वाहकी भावनासे 'कल्याण'के कार्यको किसी रूपमें सँभाल रहा हूँ। वास्तवमें 'कल्याण'के कार्यको मैं श्रीभाईजी द्वारा ही किया हुआ अनुभव करता हूँ। पद-पदपर वे अपने चिन्मय रूपसे इसकी सँभाल करते हैं, अन्यथा मुझ जैसे अयोग्य, अल्पज्ञ, साधनहीन तुच्छ व्यक्तिद्वारा यह महान कार्य सम्पन्न होना सर्वथा असम्भव है। मैं स्वयं आश्चर्यचकित हूँ कि कैसे क्या कार्य

हो जाता है। उनकी पद-पदपर सँभालको देखते हुए मनको विश्वास नहीं होता कि श्रीभाईजी 'कल्याण'से पृथक् हो गये हैं। मैं तो यह मानता हूँ कि 'कल्याण' उनका है और वे 'कल्याण' के हैं, या यों कहें कि वे 'कल्याण' स्वरूप ही हो गये हैं। हमारा विश्वास ही नहीं, अनुभव है कि श्रीभाईजी परोक्ष रूपमें आज भी 'कल्याण' को सँभाल रहे हैं और इसी कारण इसका कार्य सुचारु रूपसे चल रहा है।''

'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादन-कार्यको सँभालते समय भी गोस्वामीजीकी यही मान्यता थी कि पत्रिका-सम्पादनका कार्य सम्पन्न हो रहा है मेरे द्वारा नहीं, अपितु उनके (अर्थात् बाबूजीके) द्वारा, भले ही यह सम्पन्नता परोक्ष रूपसे ही रही हो। समर्पणका जैसा आदर्श गोस्वामीजी महाराजने उपस्थित किया, वह सर्वथा अनुपम है।

'कल्याण-कल्पतरु' और 'कल्याण' पत्रिकाओंके कार्यसे अलग गोस्वामीजीने भक्तकवि सूरदासजीके भ्रमर-गीतके कई सौ पदोंका हिन्दीमें अर्थ लिखा। २७० श्लोकोंवाली 'श्रीराधा-सुधा-निधि' ग्रन्थके पदच्छेद-अन्वय-अर्थसहित टीकाके सम्पादनका कार्य भी गोस्वामीजीद्वारा सम्पन्न हुआ। गीताप्रेससे संस्कृत एवं अँगरेजी भाषाका जितना साहित्य, चाहे पत्रिकाके रूपमें अथवा पुस्तकके रूपमें छपता, उसकी शुद्धि एवं प्रामाणिकताका अधिकांश श्रेय गोस्वामीजीके परिश्रमको है।

श्रीरामचरितमानसके बारेमें अब तो यह बात प्रायः कही-सुनी जाती है कि यदि इस ग्रन्थकी रचनाका श्रेय गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीको है तो इस ग्रन्थको नगर-नगर, ग्राम-ग्राम पहुँचानेका श्रेय गीताप्रेसके माध्यमसे बाबूजीको है। गीताप्रेससे श्रीरामचरितमानसको प्रकाशित करनेके पहले बाबूजीने मानस पाठका संशोधन गोस्वामीजीसे करवाया। गोस्वामीजीको इस संशोधन-कार्यमें महत्त्वपूर्ण सहयोग मिला हिन्दीके विद्वान श्रीनन्ददुलारेजी वाजपेयीसे। फिर स्वयं बाबूजीने मानसका हिन्दीमें अर्थ लिखा। मलिहाबाद स्थित मानसकी प्रति, राजपुर स्थित अयोध्या काण्डकी प्रति, दुलही ग्राम स्थित सुन्दर काण्डकी प्रति, श्रावण कुञ्ज (अयोध्या) स्थित बालकाण्डकी प्रति, गोलाघाट (अयोध्या) स्थित मानसकी प्रति तथा और भी कुछ प्रतियाँ, इन सभी प्रतियोंका तुलनात्मक अध्ययन करके ही गोस्वामीजीने मानसका पाठ संशुद्ध किया था। आज गीताप्रेससे मानसका जो पाठ प्रकाशित हो रहा है, उसे प्रस्तुत किया गोस्वामीजीके

अध्ययनशील व्यक्तित्वने ही।

गोस्वामीजी अनुवाद एवं सम्पादनके कार्यमें अधिक व्यस्त रहा करते थे, अतः कई-कई दिनतक वे बाबूजीसे मिल नहीं पाते थे। बाबूजीके सेवा-परायण नित्य परिकर भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालको यह प्रिय नहीं लगा। एक दिन भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीने गोस्वामीजीसे कहा— आपको दिनमें कम-से-कम एक बार बाबूजीके पास जाना चाहिये। न जाने कितने लोग दूर-दूरके स्थानोंसे मिलनेके लिये आते हैं और आप यहाँ रह करके भी बाबूजीसे नहीं मिलते?

गोस्वामीजीने मधुर स्वरमें उत्तर दिया— यदि मैं मिलने जाता हूँ तो कम-से-कम आधा घंटा समय लग ही जायेगा। इस आधे घंटेका उपयोग यदि मैं उनके बतलाये हुए कार्यको करनेमें लगाऊँ तो कितना सुन्दर हो? उनके द्वारा निर्दिष्ट कार्य पहले ही पूरा नहीं हो पाता। यदि मैं प्रतिदिन उनके पास जाने लगूँ तो जानेसे उनके कार्यकी ही हानि होगी। मैं अपने मनकी बात कैसे समझाऊँ? उनका दर्शन और उनका सामीप्य कौन नहीं चाहता? उनके दर्शन और संभाषणसे मुझे बड़ा सुख मिलेगा, परंतु इस सुखसे अधिक सुखप्रद है उनकी आज्ञाका पालन। मेरी आन्तरिक चाह है कि उनका कार्य पूर्ण हो।

गोस्वामीजीके उत्तरको सुनकर भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी मौन हो गये। क्रमशः गोस्वामीजीपर कार्य-भार अधिकाधिक बढ़ता ही चला जा रहा था। उनके कार्यमें कुछ सहारा दे देनेकी भावनासे एक बार श्रीमद्भागवतमहापुराणके कुछ अध्यायोंका अँगरेजीमें अनुवाद एक विख्यात विद्वानसे करवाया गया। उस अँगरेजी अनुवादमें गोस्वामीजीको कई न्यूनताएँ दिखलायी दीं। श्लोकके मध्यमें जहाँ 'च', 'तत्', 'ह', 'हि', 'एव', 'वा', 'बत', 'अपि', 'इव', 'अथ', 'इति' आदि शब्द आते हैं, इन शब्दोंके प्रयोगके बारेमें अच्छे-अच्छे विद्वानोंकी कुछ-कुछ ऐसी धारणा है कि कई बार तो इन शब्दोंको काव्य-रचना पूर्ण करनेके लिये श्लोकोंमें भर दिया गया है। गोस्वामीजीकी अति सुदृढ़ मान्यता यह थी कि इन शब्दोंको पाद-पूरणार्थ-प्रयोगके रूपमें सोचना अपनी अल्पज्ञताका परिचय देना है। इतना ही नहीं, इससे

यह भी ध्वनित होता है कि ऐसे टिप्पणीकर्ता विद्वान्, जो इन शब्दोंका प्रयोग पाद-पूर्तिके रूपमें देखते हैं, वे पुराणों-जैसे विशाल वाङ्मयके रचयिता वेदव्यासजीको ऋषि-दृष्टि-सम्पन्न द्रष्टा-कवि नहीं मानकर मात्र एक श्रेष्ठ कवि मानते हैं। वास्तविकता यह है कि श्रीमद्भागवतमहापुराणके एक-एक शब्दमें अर्थ-गाम्भीर्य है और उस अर्थ-गाम्भीर्यकी गहराईतक पहुँच न होनेके कारण ही इस प्रकारके हलके अभिमत भागवतकारके प्रति व्यक्त कर दिये जाते हैं। ऐसी भ्रान्त धारणाओंके फलस्वरूप जो अर्थ-दोष उस अनुवादमें थे, उन सबको गोस्वामीजीने बाबाको दिखलाया। बाबाका भी मत वही था, जो गोस्वामीजीका था। बाबा तो श्रीमद्भागवतमहापुराणके एक-एक शब्दको महत्त्वपूर्ण मानते हैं और उन्हें देर नहीं लगी गोस्वामीजीके कथनको समझनेमें। उस अँगरेजी अनुवादमें व्याप्त अर्थ-दोषवाली बात बाबाके भी ध्यानमें भली प्रकारसे आ गयी। फिर उन विख्यात विद्वान द्वारा कृत अँगरेजी अनुवादको आलमारीमें सुरक्षित रख देनेके लिये कहकर बाबाने गोस्वामीजीसे निवेदन किया— गोस्वामीपाद! आपपर कार्य-भार अवश्य ही अधिक है, किंतु जगतके समक्ष प्रामाणिक अनुवाद रखनेके लिये यह अनुवाद-कार्य आप ही पूर्ण करें।

और यह अनुवाद-कार्य गोस्वामीजीद्वारा सम्पन्न हुआ। बाबा गौरवमयी वाणीमें कई बार कहा करते हैं कि अपने आर्ष ग्रन्थोंका ऐसा प्रामाणिक और आधिकारिक अँगरेजी अनुवाद अभीतक मेरे देखनेमें नहीं आया। गोस्वामीजीके अनुवाद-कौशलकी गरिमाको देश-विदेशके अच्छे-अच्छे विद्वानोंने उन्मुक्त मनसे स्वीकार किया है।

प्राच्य पुरातन विद्या विशारद डा.श्रीविश्वम्भरशणजी पाठकके विचारानुसार गोस्वामीजीने भारतीय धर्म-ग्रन्थोंके अँगरेजी अनुवादके कार्यमें महान आदर्शकी प्रतिष्ठा की है। हिन्दू धर्म-ग्रन्थोंका अँगरेजीमें अनुवाद करनेवाले आजतक जितने भी विद्वान हुए हैं, चाहे वे किसी काल अथवा देशके हों, उन सबको गोस्वामीजीने पीछे छोड़ दिया है। वेदोंके महापण्डित कहलानेवाले श्रीमैक्समूलर महोदय, इसी प्रकार अनुवाद-कार्यके क्षेत्रमें अमेरिकी विद्वान मारिस ब्लूमफील्ड, जर्मन विद्वान गेल्डनर, भारतीय विद्वान आनन्दकुमार स्वामी, कोई भी गोस्वामीजीकी गरिमाका स्पर्श करनेमें वस्तुतः समर्थ नहीं है।

गोस्वामीजीकी मान्यता रही है कि साहित्य-क्षेत्रके काव्यों और धर्म-क्षेत्रके काव्योंके अनुवादकी शैलीमें अन्तर होना चाहिये और इस अन्तरका हेतु यही है कि धर्म-काव्योंमें प्रत्येक शब्दकी प्रयोग-पद्धति और प्रत्येक वाक्यकी रचना-शैलीके पीछे एक विशेष प्रयोजन है। अध्यात्म-साधना और शब्द-साधना, इन दोनों साधनाओंसे गोस्वामीजीका जीवन परिपूर्ण था, इसीके फलस्वरूप उन्हें इस विशेष प्रयोजनकी जानकारी हो सकी। हिन्दू धर्मके आर्ष वाङ्मयका अँगरेजी भाषामें प्रामाणिक अनुवाद किस पद्धतिसे होना चाहिये, इसपर गोस्वामीजीने गम्भीरतापूर्वक विचार किया और उस चिन्तन-नवनीतको उन्होंने कार्य-रूपमें प्रतिफलित भी कर दिखलाया।

एक बार बाबाने बाबूजीकी एक कृतिका एक श्रेष्ठ विद्वानसे संस्कृतमें अनुवाद करवाया। वह अनुवाद ठीक लगनेके बाद भी बाबाने उस संस्कृत अनुवादको देखनेके लिये गोस्वामीजीके पास भेज दिया। उस संस्कृत अनुवादमें एक प्रयोगके सामने प्रश्नवाचक चिह्न लगाकर गोस्वामीजी बाबाके पास आये। गोस्वामीजीने वह प्रयोग दिखलाते हुए बाबासे कहा— मेरी अल्प समझके अनुसार यह प्रयोग सही नहीं लग रहा है।

बाबाको वह प्रयोग सही लग रहा था। बाबा द्वारा पूछे जानेपर गोस्वामीजीने अपने पक्षमें कुछ कारण बतलाये। जब कुछ निर्णीत नहीं हो सका तो यह तय हुआ कि किन्हीं प्रौढ संस्कृत वैयाकरणको बुलाकर इस प्रयोगके विषयमें निर्णय लिया जाये। गोरखपुरकी एक संस्कृत पाठशालाके व्याकरणाचार्यको बुलवाया गया। उनको सब बात समझानेमें ही आधा घंटा लग गया। सब समझ करके भी वे अपना निर्णय नहीं दे पाये। फिर गीताप्रेसमें कार्य करनेवाले एक पण्डितजीको बुलवाया गया, जो व्याकरणके विशेषज्ञ माने जाते थे। वे व्याकरण- विशेषज्ञ दोनों पक्षोंकी बातको सुनकर भी कोई समाधान नहीं दे पाये। फिर यह सोचा गया कि वाराणसीसे किसी व्याकरण-मर्मज्ञको बुलवाकर निर्णय करवाया जाये। जब बात बढ़ते-बढ़ते यहाँतक आ गयी तो गोस्वामीजीने कहा— क्यों किसीको बुलवाया जाये ? हमलोग परस्परमें विचार करके स्वयं निर्णय कर लें।

बाबा और गोस्वामीजीके मध्य यह विचार-विनिमय तीन दिनतक चलता रहा। यह एक प्रकारका मधुर शास्त्रार्थ था। दोनों पक्ष उस प्रयोगके औचित्य-अनौचित्यपर अपने-अपने तर्क प्रस्तुत कर रहे थे। फिर यह तय हुआ कि श्रीभट्टोजी दीक्षित द्वारा प्रणीत व्याकरण-ग्रन्थको देखना चाहिये। उस

व्याकरण-ग्रन्थमें दोनों ही बातें दी गयी थीं और दोनों प्रकारके प्रयोगोंको सही ठहराया गया था। अब तो कोई प्रश्न ही शेष नहीं था। इस व्याकरणग्रन्थने दोनों पक्षोंको पूर्ण सन्तुष्ट कर दिया। दोनों पक्षोंका समाधान होते ही बाबाने तत्काल गोस्वामीजीकी मान्यताको आदर दिया और उस संस्कृत अनुवादमें गोस्वामीजीके कथनानुसार प्रयोगको ठीक कर दिया।

इस प्रसंगको सुना करके बाबा कई बार गोस्वामीजीके बारेमें कहा करते हैं कि व्याकरणकी गहराईमें उनकी पैठ और स्व-पक्षको प्रतिपादित करनेकी उनकी योग्यता अनोखी थी। इधर तो बाबा इस प्रकार कहा करते थे और उधर यदि कोई शब्द-प्रयोग गोस्वामीजीके लिये कदाचित् विचारणीय बन जाता था तो वे उस सम्बन्धमें विचार एवं विवेचन करनेके लिये बाबाके पास आया करते थे।

इतने महान विद्वान होकर भी गोस्वामीजी स्वयं अमानी रहकर दूसरोंको सम्मान देनेमें सदैव तत्पर रहा करते थे। एक बार इसका बड़ा सुन्दर प्रसंग देखनेको मिला। घटना सम्भवतः सन् १९६३ ई. की है। बर्तन माँजनेवाले, फूल- पौधोंकी सँभाल करनेवाले, इस स्तरके जितने भी सेवक गीतावाटिकामें थे, उन सभीके भोजनका विशद आयोजन बाबाकी प्रेरणासे हुआ। सेवकोंमें बाबाका भगवद्भाव था और इसी भावसे यह कार्यक्रम आयोजित हुआ था। सभी सेवकोंको पहननेके लिये नवीन वस्त्र दिया गया और सभीको वाटिकाके बड़े-बड़े लोगोंने परोस-परोस करके भोजन करवाया। सेवकोंके भोजन कर लेनेके बाद ही घरवालोंने प्रसाद-भावसे भोजन किया। इस कार्यक्रममें बाबाने यह निर्धारित किया था कि सभी सेवकोंके चरण भोजनके पूर्व धोये जायँ और पाद-प्रक्षालनका यह कार्य गोस्वामीजीके द्वारा सम्पन्न हो। ज्यों ही यह बात बाबाने गोस्वामीजीसे कही, त्यों ही गोस्वामीजीने इसे अपना परम सौभाग्य माना। यह भावना उनके मनमें स्फुरित ही नहीं हुई कि मैं विद्वान सम्पादक हूँ, अथवा मैं आचार-निष्ठ भक्त हूँ, अथवा मैं गोस्वामि-कुलोद्भूत ब्राह्मण हूँ, अथवा मैं एक प्रौढ़ व्यक्ति हूँ, अपितु पाद-प्रक्षालनके कार्यके लिये स्वयंका चयन होना बाबाके अमाप्य प्यारका परिचायक माना। जब सेवकोंका यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने बाबासे प्रार्थना की– बाबा! ऐसा कार्य नहीं होना चाहिये, जो हमलोगोंको बहुत भारी पड़े। गोस्वामीजी महाराज हमलोगोंके लिये पूज्य हैं और प्रणम्य हैं, फिर क्या हमलोगोंके लिये सह्य होगा कि वे हमारे पैरोंका स्पर्श करें?

सभी सेवकोंद्वारा ऐसा कहे जानेपर पाद-प्रक्षालनका कार्य

गोस्वामीजीद्वारा नहीं हो पाया, परंतु वे तो पूर्णरूपेण प्रसन्न मनसे प्रस्तुत थे।

सन् १९५९ ई. के आस-पास एकबार बाबाने गोस्वामीजीके पास एक संदेश भिजवाया। इस संदेशको सूचना कहना चाहिये। सूचना यह थी कि बीकानेरनरेश महाराजाा श्रीगंगासिंहजीका लीला-प्रवेश हो गया है। जब गोस्वामीजी बीकानेरके प्रशासन-विभागमें कार्य करते थे तो उनका महाराजा श्रीगंगासिंहजीसे निकट सम्पर्क रह चुका था। इस सूचनाको पाकर गोस्वामीजीको आनन्द हुआ, परंतु आनन्दसे अधिक आश्चर्य हुआ। आश्चर्य हुआ यह सोचकर कि उनका निधन तो कई वर्ष पहले हो चुका था और श्रीराधाकृष्णके लीला-राज्यमें उनका प्रवेश अब हुआ और यह हुआ तो किस पुण्य अथवा साधना अथवा कृपाके फलस्वरूप हुआ? गोस्वामीजीको ज्ञात था कि महाराजा श्रीगंगासिंहजी तो राजसी ठाट-बाटके मध्य जीवन व्यतीत करनेवाले मात्र एक श्रेष्ठ हिन्दू नरेश थे। गोस्वामीजीने अपने आश्चर्यको व्यक्त किया तो बाबाने बतलाया कि महाराजा श्रीगंगासिंहजीको अपनी किसी साधनाके फलस्वरूप यह स्थिति प्राप्त नहीं हुई, अपितु यह तो वस्तुतःश्रीपोद्दार महाराजसे होनेवाले सम्पर्क एवं सम्बन्धका सुन्दर परिणाम था। इस तथ्यको सुनकर गोस्वामीजीकी बाबूजीके प्रति आन्तरिक श्रद्धा-भावना कितनी पुष्ट और प्रफुल्ल हुई होगी, यह कल्पनासे परेकी बात है।

गोस्वामीजी गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाले 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु'के सम्पादकीय विभागमें कार्य करते थे केवल सेवा-भावसे भावित होकर। द्रव्यार्जनका उद्देश्य तो रंचमात्र भी नहीं था। इसके बाद भी गीताप्रेसकी ओरसे जीवन-निर्वाहके लिये यत्किंचित् मिलता ही था। जो मिलता था, वह वस्तुतः यत्किंचित् ही था और इससे पूज्या चाचीजी (पूज्य गोस्वामीजी धर्मपत्नी) को गृहस्थ-जीवनकी व्यवस्थामें कठिनाई झेलनी पड़ती थी। चाचीजीके स्वभावमें व्यावहारिकता अधिक थी और वैसा माधुर्य नहीं था, जैसा गोस्वामीजीके व्यक्तित्वमें था। चाचीजीके रूक्ष व्यवहारसे गोस्वामीजीका मन कभी-कभी खिन्न हो जाया करता था। बाबा चाचीजीको अपनी माँके समान आदर एवं स्थान दिया करते थे। एक बार बाबाने गोस्वामीजीसे कहा—गोस्वामीपाद! आपसे एक निवेदन है। आपकी धर्मपत्नीके प्रति मेरे मनमें मातृ-भाव है। वह बाबाकी माँ है, ऐसा मानकर उसपर शासन नहीं करना चाहिये। उसकी कोई चेष्टा आपको अप्रिय लगती हो तो उसे सहन कर लेना

चाहिये।

बाबाद्वारा ऐसा कह दिये जानेके बाद गोस्वामीजीने फिर कभी चाचीजीपर शासन किया ही नहीं। सचमुच, गोस्वामीजी जैसा समर्पण-भाव होना कठिन ही है।

गोस्वामीजीका आचार-विचारपर बड़ा ध्यान रहा करता था। एक बार गोस्वामीजी गीताप्रेस गये। गीताप्रेसके मैनेजर श्रीदुर्गाप्रसादजी गुप्त अपने कार्यालयमें कुर्सीपर बैठ हुए थे। श्रीदुर्गा बाबूसे गोस्वामीजीको मिलना था। कमरेमें प्रवेश करनेके पूर्व गोस्वामीजी अपने पैरोंमेंसे कपड़ेवाला जूता निकालने लगे। श्रीदुर्गा बाबूने कहा– आप जूता क्यों निकाल रहे हैं? मेरे इस कमरेमें तो सभी लोग जूता पहने हुए ही आते हैं।

गोस्वामीजीने कहा– मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि जहाँ लिखने-पढ़ानेका सात्त्विक कार्य हो रहा हो, वहाँ जूता पहने रहा जाये अथवा जूता पहने हुए ही उस कमरेमें प्रवेश किया जाये। भले ही लोग जूता पहने हुए आपके कमरेमें जाते हों, परंतु मुझे यह रुचिकर नहीं।

श्रीदुर्गा बाबूके द्वारा निवारण किये जानेके बाद भी गोस्वामीजी जूता निकाल कर ही उनके कमरेमें गये।

वंशानुवंश-परम्परासे गोस्वामीजीके परिवारमें श्रीवल्लभ-सम्प्रदायका ही आनुगत्य रहा है। वल्लभ-कुलीय होनेके कारण गोस्वामीजीके जीवनमें शौचाचार एवं स्पर्शास्पर्शका बड़ा स्थान था। गोस्वामीजी सदा अपने घरपर ही भोजन किया करते थे। कहीं अन्यत्र भोजन करनेका प्रश्न ही नहीं था। बस, एक अपवाद था। वह था बाबूजीके घरका प्रसाद। बाबूजीके घरकी प्रत्येक वस्तु गोस्वामीजीको ग्राह्य थी। शौचाचारसे सम्बन्धित एक सरस प्रसंग उस समयका है, जब तीर्थ-यात्रा-ट्रेन मथुरा स्टेशनपर ठहरी हुई थी। बाबाके निर्देशके अनुसार ठाकुर श्रीघनश्यामजी बरसानेके एक प्रच्छन्न प्रेमी भक्तके घरसे भिक्षा-प्रसाद ले आये और बाबाको दे दिया। बाबाने कण-मात्र स्वीकार करके वह भिक्षा-प्रसाद पा लेनेके लिये गोस्वामीजीको दे दिया। गोस्वामीजीका नित्य-नियम अभी सम्पन्न नहीं हुआ था और इतना ही नहीं, स्पर्शास्पर्श-निष्ठाकी प्रबलताके कारण हर वस्तु ग्राह्य भी नहीं थी। इन दोनों बातोंके होते हुए भी गोस्वामीजीने बिना विचार किये हुए भिक्षा- प्रसादको पा लिया, केवल इसीलिये कि बाबाने पा लेनेके लिये कह दिया है। ऐसा

समर्पण-भाव था गोस्वामीजीका बाबा तथा बाबूजीके प्रति।

अपने समर्पित जीवनके कारण गोस्वामीजी बाबूजीके परिवारके एक ऐसे अभिन्न अंग बन गये थे कि परमादरणीया बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) उनको चाचाजी कहती थी और बाईकी चारों सन्तानें उनको नानाजी कहती थीं। बाईके प्रति तथा बाईके बालकोंके प्रति गोस्वामीजीके मनमें अत्यधिक दुलार था। बाबूजीके चले जानेके बाद गोस्वामीजीका वात्सल्य इन बालकोंके प्रति और भी अधिक उमड़ पड़ा था।

ग्रीष्मकालमें बाबा तथा बाबूजी स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) जाया ही करते थे। उस समय गोस्वामीजी गीतावाटिकामें रहा करते थे। पीछे एक वरिष्ठ व्यक्तिको रहना ही चाहिये गीतावाटिकाकी सँभालके लिये। केवल सँभाल ही नहीं, 'कल्याण-कल्पतरु' के सम्पादन-कार्यको पूरा करनेके लिये। बस, गोस्वामीजीको गीतावाटिकाका दायित्व सँभलाकर बाबूजी बाबाके साथ स्वर्गाश्रम चले जाया करते थे। एक बार कोई ऐसा आवश्यक कार्य आ गया कि गोस्वामीजीको स्वर्गाश्रम जाना पड़ गया। गोस्वामीजी प्रातःकाल आठ-नौ बजे बाबूजीके पास डालमिया कोठी पहुँचे। पहुँचनेपर शौच-स्नानके उपरान्त बाबूजीसे आवश्यक बातचीत हुई। इसके बाद बाबूजीने कहा— आप आज ही अपराह्नकालमें गोरखपुर वापस चले जायें।

भोजनके बाद गोस्वामीजी गोरखपुर वापस जानेकी तैयारीमें लग गये। ज्यों ही बाईको पता चला कि चाचाजी तो वापसी यात्राकी तैयारीमें लगे हैं, उसे बड़ा बुरा लगा। कितने वर्षोंके बाद तो गोस्वामीजीका आना हुआ और न जाने कितने मिलनेवाले, दर्शन करनेवाले लोग होंगे? फिर यह भाग-दौड़ भी क्या कोई भली बात है कि आये और तुरंत चल दिये? बेटी होनेके नाते पिताजीसे हठ करनेका अधिकार बाईको सदा था, सदा है और यह प्रीति-कलह भी कैसा मधुर है कि बेटीके बाल-हठके सामने बाबूजीको झुकना पड़ा। बाबूजीने गोस्वामीजीको रोक लिया। फिर गोस्वामीजी कई दिन स्वर्गाश्रममें रहे, पर अपनी ओरसे कोई इच्छा नहीं। बाबूजीने वापस जानेके लिये कहा तो मनसे पूर्णतः तैयार और ठहर जानेके लिये कहा तो उसके लिये भी भीतरसे वैसी ही तैयारी। गोस्वामीजीका न चले जानेसे प्रयोजन था और न ठहर जानेसे प्रयोजन। बस, प्रयोजन है तो इतना ही है कि तुम संचालन करो और तुम्हारे संकेतपर यह जीवन परिचालित रहे। गोस्वामीजीका जीवन-सूत्र था— ''वंशीवत् जीवनको खाली कर देना ही समर्पणकी सीमा है। अपना स्वर

अपने राग अपनी चाह कुछ नहीं, प्यारेकी जैसी इच्छा''।

गोस्वामीजीका कण्ठ बड़ा सुरीला था। वृद्धावस्थामें भी उनके गायनका लालित्य बना रहा। गीतावाटिकामें प्रायः प्रतिदिन ही बाबूजीका प्रवचन एक घंटे प्रातःकाल हुआ करता था। बादके वर्षोंमें तो गोस्वामीजीको समय कम मिला करता था, परंतु गीतावाटिकाके आरम्भिक वर्षोंमें इस प्रवचनके पूर्व गोस्वामीजी एक भक्ति-पदका गायन किया करते थे। जब तीर्थ-यात्रा-ट्रेन गयी थी, तब उस ट्रेनमें बाबूजीके साथ गोस्वामीजी भी गये थे। जहाँ-जहाँ ट्रेन पहुँचती थी, वहाँ- वहाँ बाबूजीका स्वागत होता था और उपस्थित भक्तोंके मध्य बाबूजीको प्रवचन भी देना पड़ता था। वहाँ भी गोस्वामीजी प्रवचनके पूर्व पद गाया करते थे।

एकान्तवास और स्वास्थ्य-लाभकी दृष्टिसे बाबूजी सन् १९३९ से १९४५ तक रतनगढ़में रहे थे। वहींपर 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु' का सम्पादकीय विभाग भी था। बाबा भी बाबूजीके साथ थे और उनका मौन व्रत चल रहा था। इन्हीं दिनोंकी बात है। बाबा तथा बाबूजी और कुछ निकटवर्ती जन बैठे हुए थे। उसी समय गोस्वामीजीने अपने सुललित कण्ठसे श्रीरासपञ्चाध्यायीका गोपीगीत 'जयति तेऽधिकम्' गाया। गायनका माधुर्य अपनी सीमापर था। सम्पादकीय विभागके एक सदस्य आदरणीय श्रीमधुरजी साथ-साथ वीणा बजा रहे थे। उनकी मयूर वीणाकी झंकृतिने उस माधुर्यको महामाधुर्यमय बना दिया। उस माधुर्यका बाबूजी और बाबापर ऐसा प्रभाव पड़ा कि दोनों अत्यधिक विभोर हो उठे। बाबूजीकी विभोरता गम्भीर थी और वे बहुत अधिक अन्तर्मुख हो गये। बाबाकी विभोरता उच्छलित थी और वे भाव-विभोर होकर व्यथापूर्ण हृदयसे सकरुण वाणीमें 'राधा-राधा' बोलने लगे, अपितु पुकारने लगे। एक विचित्र प्रकारके भावसे पूर्ण हो उठा था उस स्थानका वातावरण। रतनगढ़के वे लोग सौभाग्यशाली थे, जो उस अवसरपर उपस्थित थे और इस प्रकार सौभाग्यशाली बननेका अवसर अन्तरंग जनोंको कई बार मिल जाया करता था। बाबाकी रुचि देखकर इस प्रकारके एकान्त गायनका आयोजन रतनगढ़की हवेलीके एकान्त क्षणोंमें कई बार हुआ है।

बाबाने सन् १९५६ ई. में कठोर मौन व्रत लिया था। मौन लेनेके पहले बाबाने गोस्वामीजीसे कहा था— रात्रिमें जब भी आपको अवकाश मिले, आप मुझे व्रज भावके पद सुना दिया करें। भले आप एक ही पद

सुनायें, पर प्रति-रात्रि मेरी कुटियाकी दक्षिण दिशामें स्थित पगडंडीपर टहलते हुए सुनाया करें।

गोस्वामीजी द्वारा पद सुनानेका क्रम अखण्ड रूपसे चलता रहा। इसमें विराम आया तब, जब सवा मास बाद बाबा-बाबूजी गोरखपुरसे रतनगढ़ चले गये।

सम्भवतः सन् १९५९ ई. की बात होगी। गीतावाटिकामें बाबूजीका प्रवचन नित्यप्रतिके नियमके अनुसार प्रातःकाल होनेवाला था। उस दिन गोस्वामीजी भी प्रवचनमें आये थे। इन दिनों गोस्वामीजी प्रायः प्रवचन- कार्यक्रममें नहीं आ पाते थे। कार्यकी अधिकताके कारण अवकाश कम मिल पाता था, परंतु कभी-कभी तो आते ही थे। ज्यों ही बाबूजीने श्रोताओंके सामने आसन ग्रहण किया, गोस्वामीजीसे पद गानेके लिये अनुरोध किया गया। गोस्वामीजीने बाबूजी द्वारा रचित पद गाना आरम्भ किया।

मेरी इस विनीत विनतीको सुन लो, हे ब्रजराजकुमार!
युग-युग, जन्म-जन्ममें मेरे तुम ही बनो जीवनाधार।।
पद-पंकज-परागकी मैं नित अलिनी बनी रहूँ, नँदलाल!
लिपटी रहूँ सदा तुमसे मैं, कनकलता ज्यों तरुण तमाल।।
दासी मैं हो चुकी सदाको, अर्पणकर चरणोंमें प्राण।

इस पाँचवी पंक्तिको गाते-गाते गोस्वामीजीकी स्थिति कुछ दूसरी ही हो गयी। अन्तरकी विह्वलताने कण्ठको अवरुद्ध कर दिया। स्वर-भंगको सँभालनेकी चेष्टा उन्होंने की, पर वह असफल प्रयास था। अश्रु-प्रवाहने पूर्ण स्वरावरोध उत्पन्न कर दिया था। क्या बाबूजी और क्या श्रोतागण, सभी उपस्थित लोग गोस्वामीजीकी उस विह्वलताके प्रवाहमें डूब-उतरा रहे थे। वह पद क्या था, उस पदमें गोस्वामाजीके समर्पित जीवनकी भावनाएँ मुखरित थीं। बाबूजी मौन, श्रोतागण मौन और गोस्वामीजी भी मौन; सारे वातावरणमें मौन परिव्याप्त हो रहा था। उस नीरवताको अपने गायनसे पुनः गुञ्जित करनेका एक अल्प प्रयास किया गोस्वामीजीने। उन्होंने गानेके लिये वह पाँचवीं पंक्ति पुनः उठायी, पर पुनः वे गा न सके। पुनः वातावरणमें नीरवता परिव्याप्त हो गयी। चौदह पंक्तिवाले इस पदकी केवल चार पंक्तियाँ ही गायी जा सकीं, शेष अन-गायी ही रह गयीं। तब बाबूजीने अपना प्रवचन आरम्भ किया और आज उस प्रवचनका विषय था— वृषभानुनन्दिनी कृष्णप्रिया श्रीराधाका मूक समर्पण।

गोस्वामीजीकी भाव-विभोरताका एक और उल्लेखनीय सरस प्रसंग

स्मृति- पथपर उभर रहा है। 'कल्याण'के भावी विशेषांक श्रीरामांकके लिये आये हुए लेखोंका सम्पादन-कार्य चल रहा था। एक लेख भगवती श्रीसीतापर था। वह लेख पढ़कर गोस्वामीजीको सुनाया जा रहा था। लेखको सुनते-सुनते गोस्वामीजी इतने अधिक भाव-भरित हो उठे कि उनके नेत्रोंके अश्रु झर-झर करके कपोलोंपर प्रवाहित होने लग गये। उन्हें विस्मृत हो गया कि मैं सम्पादकीय-विभागके कमरेमें बैठा हुआ हूँ। तुरंत लेखका सुनाना बन्द कर दिया गया और उन्हें कमरेके एकान्तमें छोड़कर धीरेसे दोनों कपाट सटा दिये गये।

सन् १९६१ ई. के ग्रीष्म ऋतुकी बात होगी। बाबूजी रातको गोस्वामीजीसेश्रीराधाकृष्णकी लीलाके पद सुना करते थे। अधिकांश बार ये पद बाबूजीके स्वरचित हुआ करते थे। इन पद-गोष्ठियोंमें कीर्तनिया श्रीहरिवल्लभजी और ठाकुर श्रीघनश्यामजी, यदि वे लोग गीतावाटिकामें हैं तो अवश्य उपस्थित रहा करते थे। इन पद-गोष्ठियोंमें केवल अन्तरंग व्यक्ति ही रहा करते थे। यह पूर्णतः अन्तरंग कार्यक्रम प्रायः रातके नौ-साढे-नौ बजे आरम्भ होता था और लगभग एक-दो घंटे चला करता था। यदि कभी रंग गहरा हो जाता था तो यह कार्यक्रम रातके एक-दो बजेतक भी चलता रहता था। एक बार ऐसा हुआ कि अर्ध रात्रितक जागरण करनेका क्रम कई दिनतक चलता रहा। इससे चाचीजी (गोस्वामीजीकी धर्मपत्नी) को बड़ी चिन्ता हुई। गोस्वामीजी ब्राह्म मुहूर्तमें उठ जाया करते थे तथा नित्यके दैनन्दिन पूजन-अर्चनसे निवृत्त होकर दिन भर सम्पादन-कार्यमें जुटे रहते थे। इस जागरणसे तो गोस्वामीजीका स्वास्थ्य गिर जायेगा, बस, यही चिन्ता चाचीजीको पीड़ा पहुँचा रही थी। उन्होंने एक-दो बार गोस्वामीजीसे अनुरोध भी किया कि आपको रातमें इतनी देरतक नहीं जगना चाहिये। गोस्वामीजीने चाचीजीको कोई उत्तर नहीं दिया। समर्पित-जीवन गोस्वामीजीकी आन्तरिक भावना यही थी कि यदि बाबूजी मुझको जगाना चाहते हैं तो वैसा ही हो। इसके अतिरिक्त यह ऐकान्तिक कार्यक्रम ही तो जीवनको वास्तविक जीवन प्रदान किया करता था। पद-गानके निमित्तसे जो रस-धारा बहने लगती थी, उसीसे जीवनको वास्तविक तुष्टि और पुष्टि प्राप्त होती थी। अस्तु, गोस्वामीजीके प्रति किया गया अनुरोध जब सफल नहीं हुआ तो चाचीजीने अपना संदेश और अपनी चिन्ता बाबूजीके पास कहला भिजवाया। उस

संदेश-वाहकके द्वारा प्रत्युत्तरस्वरूप बाबूजीने कहलावया– उनका कहना सही है कि रातको जागरण करनेसे स्वास्थ्यपर कुप्रभाव पड़ता है, पर यह कुप्रभाव पड़ता है तब, जब लौकिक कार्योंके लिये जगना पड़े अथवा पारमार्थिक कार्योंमेंभी उत्साह-शून्य और भाव-शून्य होकर जगना पड़े। पद-गान तो स्फूर्ति, दिव्यता, प्रेरणा आदि ही प्रदान करता है।

बाबूजीके उत्तरसे चाचीजीका समाधान हो गया।

एक बार चाचीजी बीकानेर गयी हुई थीं। दुर्भाग्यसे वहाँ उनके पैरकी हड्डी टूट गयी। यह कष्टपूर्ण समाचार बीकानेरसे गोरखपुर आया, पर गोस्वामीजीने किसीके भी सामने यह बात उठायी ही नहीं कि मुझे बीकानेर जाना है। पहले अपने मनके भीतर बात उठे, तब न दूसरे लोगोंके बीच बात चलायी-उठायी जाये! उनके मनमें किसी प्रकारके संकल्प-विकल्पका उद्भव हुआ ही नहीं। इस समाचारको सुन करके भी वे ऐसे निर्लिप्त रहे, मानो यह समाचार बीकानेरसे आया ही नहीं। सच पूछा जाये तो उनके परिवारवाले अब कहने मात्रके लिये पारिवारिक रह गये थे। अब उनकी समस्त ममताके केन्द्र थे बाबूजी और बाबूजी ही थे उनकी पारिवारिकताकी परिधि।

तन-धन-जन का बन्धन टूटा, छूटा भोग-मोक्ष का रोग।
धन्य हुई मैं प्रियतम! पाकर, एक तुम्हारा प्रिय संयोग।।

ये पंक्तियाँ गोस्वामीजीके जीवनमें मूर्तिमान थीं। वस्तुतः गोस्वामीजीकी 'प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी'। गोस्वामीजीके इस समर्पण-भावपर बाबा मुग्ध हो गये। गोस्वामीजी तो बीकानेर गये नहीं। फिर बाबूजीने ही अपने व्यक्तियोंद्वारा उनकी चिकित्सा तथा प्लास्टरकी व्यवस्था करवायी।

गोस्वामीजीके भावमय जीवनके अनेक मधुर प्रसंग हैं। सन् १९४९ ई.में वृन्दावनसे गोरखपुर शहरमें रासमण्डली आयी। तब उस रासमण्डलीमें श्रीघनश्यामजी ठाकुरस्वरूप धारण किया करते थे। बाबाके साथ गोस्वामीजी रासलीला देखनेके लिये गये। लीला बड़ी सुन्दर हुई। लीलाका रंग गोस्वामीजीके मनपर चढ़ा हुआ था। लीला-दर्शनके एक-दो दिन बादकी बात है। गोस्वामीजी अपने घरके कमरेमें भूमिपर लेटे हुए थे। कमरेके एकान्तमें उनका मन उस दृष्ट लीलाके भाव-प्रवाहमें बहा जा रहा

था। उस प्रवाहकी छलक कभी-कभी नेत्रोंके कगारोंको छू लेती थी। तब वे उन भाव-विन्दुओंको धीरेसे पोंछ लेते थे। गोस्वामीजी चाहते तो यह थे कि कभी मेरे घर श्रीठाकुरस्वरूपजी पधारें, परंतु अपने संकोची स्वभावके कारण श्रीठाकुरजीको कहें तो कैसे कहें? इसी प्रकारके भावोंमें चुपचाप लेटे हुए गोस्वामीजीका मन निमग्न था कि तभी किसीने चरणोंका स्पर्श किया। नेत्र खोलकर देखा तो ठाकुरस्वरूप श्रीघनश्यामजी ही प्रणाम कर रहे हैं। अनेक सूत्रोंसे गोस्वामीजीकी गुण-गाथाको सुन करके उनके प्रति ठाकुरस्वरूप श्रीघनश्यामजीका पितृ-भाव हो गया था। उन्हें प्रणाम करते देखकर गोस्वामीजी विस्मय-पूरित हो गये। मन अनेक प्रकारके भावोंसे भर गया। ''यह असम्भव आज कैसे सम्भव हो गया? आज यह अकल्पनीय कृपा कैसे हो गयी? आज यह घर किस पुण्यके फलस्वरूप पवित्र हो गया?'' इन सब भावोंका वेग इतना प्रबल था कि गोस्वामीजी बहुत देरतक जडवत् पड़े रहे। अपनी जड़िमा स्थितिके कारण गोस्वामीजी ठाकुर श्रीघनश्यामजीका पर्याप्त समयतक प्राथमिक स्वागतोपचार नहीं कर पाये। ठाकुर श्रीघनश्यामजीको किसी प्रकारके स्वागत- सत्कारकी अपेक्षा नहीं थी, फिर भी उन्हें यह बड़ा अटपटा लगा कि गोस्वामीजी कुछ बोल क्यों नहीं रहे हैं। भावके शमित होनेमें कुछ समय तो लग ही गया। जब गोस्वामीजी कुछ प्रकृतिस्थ हुए, तब तो गोस्वामी दम्पतिने उनका जो स्वागत किया, जो लाड-चाव किया, उसकी कोई सीमा नहीं थी। गोस्वामीजीके उस स्वागतोल्लासको स्मरण करके ठाकुर श्रीघनश्यामजी आज भी पुलकित हो उठते हैं। तबसे यह एक परम्परा-सी ही बन गयी कि जब भी ठाकुर श्रीघनश्यामजी गोरखपुर आयें, उनको गोस्वामीजीके यहाँ एक बार भोजन करना ही है। यह क्रम गोस्वामीजीके जीवन भर अखण्ड रूपसे चला।

गोस्वामीजीके सामने प्रलोभन कम नहीं आये। सबसे बड़ा प्रलोभन था शंकराचार्य-पदका। श्रीजगन्नाथपुरी स्थित श्रीगोवर्धनपीठके पीठाधिपति अनन्त श्रीविभूषित शंकराचार्य पूज्य स्वामी श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराजने गोस्वामीजीकी साधुता और विद्वत्तासे प्रभावित होकर उन्हें अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करनेकी अभिलाषा व्यक्त की। परम पूज्य शंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न उद्भट विद्वान थे। जब आप सोलह वर्षके किशोर थे, उस समय आपकी

धारावाहिक एवं श्रेष्ठ संस्कृत बोलनेकी क्षमताको देखकर दक्षिण भारतकी पण्डित सभाने आपको 'सरस्वती पुत्र' की उपाधिसे विभूषित किया था। सन् १९०४ ई. में आपने बीस वर्षकी आयुमें बम्बईमें एक ही वर्षमें एक साथ सात विषयों (संस्कृत, अँग्रेजी, दर्शन, गणित, इतिहास, विज्ञान तथा एक और विषय) में एम.ए. की परीक्षा दी और आप सातों विषयोंमें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए। केवल भारत ही नहीं, विश्वके किसी भी देशका कोई भी युवक इस प्रकारकी योग्यताका उदाहरण आजतक प्रस्तुत नहीं कर पाया है। जिस प्रकार पाणिनी व्याकरणके चौदह माहेश्वर सूत्रोंके आधारपर सारी संस्कृत व्याकरण पढ़ायी जाती है, उसी प्रकार आपने वेदोंका मन्थन करके ऐसे सोलह सूत्र छाँटकर निकाले हैं, जिनकेआधार पर आधुनिक कालकी गणितकी ऊँची-से-ऊँची शिक्षा दी जा सकती है। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजद्वारा आविष्कृत ये सोलह वैदिक सूत्र और आपके द्वारा अँग्रेजीमें लिखित 'वैदिक मैथेमेटिक्स' आज देश और विदेशके गणितज्ञोंके लिये आश्चर्य और आकर्षणके विषय बने हुए हैं। सन् १९६० ई. में पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज ब्रह्मलीन हुए थे। अपने महाप्रयाणके पूर्व उन प्रखर प्रतिभाशाली महापण्डित विश्व-विश्रुत पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजने गोस्वामीजीको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा था।

शंकराचार्य-पदका प्रस्ताव ज्यों ही सामने आया, त्यों ही गोस्वामीजीके अन्तरमें धर्म-संकटकी विषम स्थिति उत्पन्न हो गयी। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी अपने धर्माचार्य हैं, वे नित्य परम वन्दनीय हैं, ऐसे गौरवपूर्ण शंकराचार्य-पदके लिये चयन उनका कृपा-प्रसाद ही है, उनका संकेत मात्र ही आदेशके समकक्ष है और उनकी रुचि देखकर इस प्रस्तावको तुरंत स्वीकार कर लेना चाहिये था, परंतु गोस्वामीजीका हृदय बाबूजीसे विलग होनेके लिये प्रस्तुत नहीं था। फिर बड़े विनम्र शब्दोंमें अत्यधिक संकोचके साथ गोस्वामीजीने इस प्रस्तावको स्वीकार करनेमें अपनी विवशता व्यक्त कर दी।

गोस्वामीजीने शंकराचार्य-पदके प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया, अस्वीकृतिके हेतुको समझनेके लिये गोस्वामीजीकी मान्यताओंके सम्बन्धमें कुछ उल्लेख करना आवश्यक-सा प्रतीत हो रहा है। गोस्वामीजीकी सुदृढ़ धारणा थी कि शंकराचार्य- पदके मूलमें जो आदि-विभूति हैं, उन आदि-शंकराचार्यजी द्वारा धर्म-संस्थापनका जो महान कार्य उस समय हुआ था, वही महान कार्य इस समय अब बाबूजीके द्वारा हो रहा है। धर्मकी ग्लानिको दूर करनेके लिये एवं

सामाजिक प्रश्नोंपर व्यवस्था देनेके लिये जैसा पावन कार्य बाबूजी द्वारा हो रहा है; इतना ही नहीं उनके द्वारा जैसे विशाल श्रेष्ठ साहित्यकी सृष्टि हुई है तथा उनकी जैसी महाभावमयी भागवती स्थिति है, उन सबको देखकर यही लगता है कि शंकराचार्य-रामानुजाचार्य जैसे धर्म-संस्थापक आचार्योंकी, मनु-याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकार मुनियोंकी, तुलसीदास-सूरदास जैसे महाभक्त कवियोंकी एवं चैतन्यमहाप्रभु-वल्लभाचार्य जैसे रसज्ञ महान विभूतियोंकी परम्परामें बाबूजी भी परिगण्य हैं।

गोस्वामीजी भली भाँति जानते थे कि विशाल सत्साहित्यकी रचनाके द्वारा, शास्त्रीय ग्रन्थों एवं पत्रिकाके प्रकाशनके द्वारा, वैयक्तिक पत्र एवं ऐकान्तिक परामर्शके द्वारा, विभिन्न स्थानों एवं पवित्र तीर्थोंकी यात्राके द्वारा, सत्संग-सत्र एवं उत्सवोंके आयोजनके द्वारा और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात, अपनी करनी एवं रहनीके द्वारा बाबूजी समाजमें आध्यात्मिकता-धार्मिकता-आस्तिकता-नैतिकता- सात्त्विकताके संस्थापनका ही कार्य कर रहे हैं। बाबूजीद्वारा यदि एक ओर धर्म-संस्थापन एवं समाजोन्नयनका कार्य हो रहा है तो दूसरी ओर सरल भाषामें भक्ति-राज्यके रस-सिद्धान्तोंका निरूपण भी हो रहा है। और केवल निरुपण ही नहीं, उनका जीवन उस रस-सिन्धुमें सर्वथा आशिख निमग्न है। गोस्वामीजीने स्वयं देखा है कि उस निमग्नतामें प्रगाढता आनेपर बाबूजीको अपने शरीरका भान नहीं रहता था। इस प्रकारकी नितान्त शरीर-भान-रहित भाव-समाधिकी स्थितिमें उनके कई-कई घंटे निकल जाया करते थे। इसके अतिरिक्त, जब शरीरका भान रहता था, उस समय भी उनका मानस, भावके बहुत ऊँचे स्तरपर प्रतिष्ठित रहा करता था। सच्ची बात यह है कि बाबूजीके व्यक्तित्वका सम्पूर्ण अस्तित्व भक्ति-रसमें सर्वथा निमग्न है और इसीके फलस्वरूप उनके द्वारा धर्म-संस्थापन एवं समाजोन्नयनका अद्‌भुत महान् कार्य हो पा रहा है। ऐसा व्यक्तित्व भला कहाँ देखने-सुननेको मिलता है? गोस्वामीजीकी परम सुदृढ़ आस्था थी कि बाबूजी इस युगकी महान् विभूति हैं। भारतीय संत-परम्परामें उनका स्थान बहुत ऊँचा है। वे 'ज्ञानोत्तर भाव-राज्य'में नित्य प्रतिष्ठित हैं। जिस 'पराभक्ति' की प्राप्ति श्रीगीताजीमें ब्रह्मभूत होनेके बाद बतलायी गयी है और जिस भक्तिके द्वारा मनुष्य भगवानको जानकर उसमें प्रविष्ट हो जाता है, उनके साथ घुल-मिलकर उनकी लीलाका एक अंग हो जाता है, उनका प्रतिरूप बन जाता है, वह तथ्य बाबूजीके व्यक्तित्वके अन्दर अक्षरशः मूर्त है। यही नहीं, श्रीकृष्ण-प्रेमकी उच्चतम भूमिकामें वे स्थित हैं।

उनकी मन-बुद्धि-वाणी सब कुछ श्रीकृष्णमय हो गये हैं। विशुद्ध प्रेमभक्तिका आदर्श एवं भगवन्नामकी महिमाको प्रतिष्ठित करनेके लिये ही जगतमें बाबूजीका आविर्भाव हुआ है। 'महिमा जासु जाइ नहिं बरनी' ऐसे बाबूजीके आन्तरिक और वास्तविक रूपको मनकी आँखोंसे देख-देख करके गोस्वामीजीके हृदयमें 'नित नव चरन उपज अनुरागा'। बाबूजीद्वारा जो महान कार्य हो रहा है तथा बाबूजीका जैसा अनुपम व्यक्तित्व है, उसके सम्बन्धमें गोस्वामीजीको कोई भ्रान्ति नहीं थी। बाबूजीके प्रति इस प्रकारकी निर्भ्रान्त आस्था इतनी अधिक सुदृढ़ थी और बाबूजीके पास रहनेकी भावना इतनी अधिक प्रबल थी कि शंकराचार्य-पदका सामाजिक सम्मान एवं आध्यात्मिक गौरव गोस्वामीजीको अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका। बाबूजीकी संनिधिसे दूर जाना उनको अभीष्ट था ही नहीं। गोस्वामीजी नित्य बाबूजीके सांनिध्यमें रहे और जीवनके अन्तिम क्षण तक गीतावाटिकामें उनका निवास रहा। गोस्वामीजीकी निष्ठा सदा ही बाबाकी वाणी द्वारा चर्चा एवं सराहनाका विषय बनी रही।

बाबा गोस्वामीजीकी आस्थाओंकी बड़ी सराहना किया करते थे, इस सम्बन्धमें एक बड़ा सरस प्रसंग षोडश गीतको लेकर है। षोडशगीतके दसवें पदकी छठवीं पंक्तिमें नित्य-निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाकी उक्ति है—

आठों पहर बसे रहते तुम मम मन-मन्दिरमें भगवान।

बाबाके मनमें ऐसा भाव स्फुरित हुआ कि इस पंक्तिमें 'भगवान' शब्दके स्थानपर कोई अन्य शब्द अर्थात् ऐश्वर्य-भावसे रहित प्रेमिल शब्द होता तो पदकी भावमयता और भी सरसीली हो जाती। बाबाकी तथा बाबूजी, दोनोंकी ही स्पष्ट मान्यता है कि नित्य-निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा एवं नित्य-निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण साक्षात् भगवती-भगवान हैं, परंतु परम प्रेमके मधुर राज्यमें उनकी यह भगवत्ता प्रसुप्त रहती है। इन परस्पर नित्य परम प्रेमी-प्रेमास्पद युगलका जो परम मधुर प्रेम-सिन्धु है, उस सिन्धुके अतल-तलमें उनकी भगवत्ता छिपी रहती है। उस भगवत्ताकी अभिव्यक्ति क्वचित् ही होती है और होती है तभी, जब कभी किसी लीलाको सम्पन्न करा देनेमें उस भगवत्ताकी आवश्यकता हो। कभी-कभी लीलाको सम्पन्न करा देनेके लिये ही उस ऐश्वर्य शक्ति भगवत्ताको किंचित् सेवा करनेका अवसर मिल जाता है, अन्यथा वह भगवत्ता सर्वथा-सर्वथा प्रसुप्त-प्रच्छन्न रहती है। षोडश गीत सच्चिन्मय प्रेम-राज्यकी परम सरस वस्तु है, अतः बाबाने अपनी भावनाको समझाते हुए बाबूजीसे कहा— इस पंक्तिमें 'भगवान' शब्दके स्थानपर यदि कोई अन्य सरस शब्द प्रयुक्त हो तो इस पदकी सरसता और भी अधिक

समृद्ध हो जायेगी।

बाबूजीने कहा— आप जैसा कहें, जो भी कहें, मैं वैसा ही कर दूँगा।

बाबाके मनमें उस समय जो पंक्ति स्फुरित हुई, वही पंक्ति बाबाने बाबूजीको बता दी— 'आठों पहर सरसते रहते तुम मन सरवरमें रसवान'।

बाबूजीने बाबाके सुझावकी बड़ी सराहना की और यह पंक्ति ज्यों-की-त्यों स्वीकार कर ली। पदमें पुरानी पंक्तिके स्थानपर इस नवीन पंक्तिको रख दिया। बाबूजी इस परिवर्तनसे प्रसन्न थे।

फिर यह बात बाबाने गोस्वामीजीको बतलायी। गोस्वामीजीने विनम्र शब्दोंमें कहा— बाबा! क्या यह परिवर्तन आवश्यक है?

बाबाने गोस्वामीजीको अपनी भावना बतलायी, जिस प्रकार उन्होंने बाबूजीको बतलाया था। यह बात नहीं कि गोस्वामीजी इस भाव-गरिमाको समझ नहीं रहे हों। ऐसी समझ होनेके बाद भी अत्यधिक दैन्यके साथ गोस्वामीजी अपने मनकी बात कहने लगे— बाबा! मैं आपकी मान्यताको सर्वांशमें स्वीकार करता हूँ, पर मेरे मनमें भी एक छोटी-सी बात है। अपनी आस्थाके अनुसार मैं षोडश गीतको और उसकी शब्दावलीको साधारण स्तरकी वस्तु नहीं समझता। ये पद मात्र काव्य-रचना नहीं है। श्रीभाईजीको भाव-समाधिकी स्थितिमें जैसी लीला और जैसे उद्‌गार उनके दृष्टि-पथपर एवं श्रुति-पथपर आविर्भूत हुए, वे ही किसी अचिन्त्य कृपासे इन पदोंकी शब्दावलीकी सीमामें सिमट आये हैं। षोडश गीतका सम्बन्ध उस भाव-समाधिकी स्थितिसे होनेके कारण इनमें किसी प्रकारका संशोधन-परिवर्तन मुझे जँच नहीं रहा है। मेरे विचारसे मूल पंक्तिको ज्यों-का-त्यों रहने देना चाहिये।

बाबाको गोस्वामीजीके विचार बड़े प्रिय लगे और इन विचारोंको बाबाने हृदयसे सम्मान दिया। तदुपरान्त उस दसवें पदमें किसी भी प्रकारके परिवर्तनकी बात समाप्त हो गयी। हाँ, बाबूजीने इतना अवश्य कर दिया कि बाबाद्वारा बतलायी गयी पंक्तिको 'एक दूसरा पाठ' के रूपमें स्वीकार कर लिया। यह दूसरा पाठ भी षोडश गीतके दसवें पदके अन्तमें छपा रहता है।

जिस तरह वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा और नन्दनन्दन श्रीकृष्ण दिखलायी देनेमें दो हैं, इसके बाद भी दोनों वस्तुतः एक ही हैं, ठीक उसी स्तरकी मान्यता थी गोस्वामीजीकी बाबा और बाबूजीकी प्रति। 'एक तत्त्व दो तनु धरैं' बाबा और बाबूजीमें उन्होंने कभी भेद माना ही नहीं। इसका प्रमाण है गोस्वामीजीका

पादुका-पूजन। 'प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।।' बाबाकी कुटियाका अति एकान्त स्थल, उस स्थलके किन्हीं परम पुण्यमय पावन क्षणोंमें बाबासे उनकी चरण-पादुका गोस्वामीजीको प्राप्त हुई और गोस्वामीजीने उनको अपने मस्तकपर धारण कर लिया। बाबाकी उस चरण-पादुकाकी अर्चना गोस्वामीजी आजीवन करते रहे और अब उन्हीं चरण-पादुकाकी अर्चना किसी अचिन्त्य सौभाग्यसे बहिन विमलाको प्राप्त है। बाबाकी यह चरण-पादुका आज भी बहिन विमलाके पूजाघरमें विराज रही है, जहाँ उनकी नित्य अर्चना होती है।

अपने जीवनकी अन्तिम अवधिमें गोस्वामीजी सात-आठ मास बहुत अधिक अस्वस्थ रहे। गीतावाटिकाके अति समीप एक मकानमें गोस्वामीजी रहा करते थे। उनकी व्याधि और पीड़ाको देखकर बाबा उन्हें गीतावाटिका ले आये। गीतावाटिकाके जिस भवनमें बाबूजी रहा करते थे, उसी भवनके एक कमरेमें गोस्वामीजीको रखा गया। गोस्वामीजीकी चिकित्सा एवं सँभाल पूर्ण तत्परताके साथ होने लग गयी। रुग्ण शय्यापर पड़े हुए गोस्वामीजीका शरीर अत्यधिक कष्टसे पीड़ित था। रुग्ण गोस्वामीजीकी चिकित्सा और परिचर्यामें जितना समय और जैसा ध्यान बाबाने दिया, उसको देखकर विस्मय होता है। इस कष्टकी स्थितिमें भी गोस्वामीजीके अधरोंपर एक ही वाक्य था– नाथ! तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण हो।

गोस्वामीजीकी भीषण रुग्णताको देखकर बाबाने कहना आरम्भ कर दिया था कि अब चलाचलीका मेला है और गोस्वामीजी अधिक नहीं रह पायेंगे। एक बार परिचर्या-रत व्यक्तियोंको ऐसा लगा कि गोस्वामीजी सम्भवतः करवट बदलना चाहते हैं अथवा बोलकर कुछ कहना चाहते हैं। उन व्यक्तियोंने पूछा– आप क्या चाहते हैं?

उनसे गोस्वामीजीने कहा– मैं कुछ नहीं चाहूँ, बस, यही चाहता हूँ।

असह्य वेदनाके होते हुए भी गोस्वामीजीने यह नहीं कहा कि उन्हें औषधि अथवा उपचारकी आवश्यकता है। कष्टकी अधिकताको देखकर यदि कोई सहानुभूति दिखलाता तो गोस्वामीजी यही कहा करते थे– प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय है। इस रुग्णतामें भी प्रभुका मंगल स्पर्श क्रियाशील है और उसीका अनुभव होता रहता है।

इस कष्टकी स्थितिमें भी गोरखपुर विश्वविद्यालयके संस्कृत विभागके

प्राध्यापक आदरणीय श्रीहेमचन्द्रजी जोशी जब गोस्वामीजीको भावपूर्ण पद सुनाया करते थे अथवा जब कभी गीतावाटिकाकी श्रद्धाभिभूत बहिनें लीला-पद सुनाया करती थीं तो गोस्वामीजीके कपोल अश्रु-सिक्त हो उठते थे। शरीर भोग रहा था कष्ट, पर मन डूब रहा था भाव-सिन्धुमें।

'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्' सूत्रके द्वारा देवर्षि नारदने यह प्रतिपादित किया है कि भगवान और भक्तमें भेदका अभाव है। पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ने लिखा है कि 'भगवानके भक्त भगवत्स्वरूप होते हैं। भगवानकी तरह महापुरुषोंके ध्यानसे भी कल्याण हो सकता है।' बाबूजीने लिखा है कि 'जो भक्तोंका सेवन करते हैं, वे भगवानका ही सेवन करते हैं।' ये सब सिद्धान्त-वाक्य हैं, जो किसी व्यक्ति-विशेषको लक्ष्य करके नहीं लिखे गये। सिद्धान्तका विवेचन और निरूपण करते-करते इन महाभागवतोंके द्वारा यह सनातन सत्य स्वतः अभिव्यक्त हो उठा और इस महान सत्यके साकार स्वरूप थे गोस्वामीजी। ऐसा लगता है कि श्रीरामचरितमानसकी अर्धाली 'राम ते अधिक राम कर दासा' को ही गोस्वामीजीने अपने जीवनका आधार बना लिया हो। जीवनका अवसान समीप देखकर एक स्वजनने बाबूजीका चित्र गोस्वामीजीके सामने दीवालपर लगा दिया, जिसे वे देखते रह सकें। इसके कुछ दिन बाद एक अन्य स्वजनने गोस्वामीजीसे पूछा– यदि आप आज्ञा दें तो आपके सामने दीवालपर श्रीराधाकृष्णका चित्र लगा दूँ।

गोस्वामीजीने प्यारभरे स्वरमें कहा– मेरे लिये श्रीभाईजीमें और श्रीराधाकृष्णमें कोई अन्तर नहीं है।

फिर बाबूजीका चित्र ही सदा गोस्वामीजीके समक्ष विराजित रहा।

गोस्वामीजीने एक स्थानपर स्वयं लिखा है– मेरा श्रीभाईजीके साथ चालीस वर्षसे ऊपरका सम्पर्क मेरे जीवनकी एक अमूल्य निधि है, जो मुझे अपने जन्मार्जित सुकृतोंके फलस्वरूप उन्हींकी अहैतुकी कृपासे अनायास प्राप्त हुई थी। इस अवधिमें उन्होंने जैसा अद्‌भुत स्नेह दिया और जिस प्रकार मेरा लाड रखा, उसे शब्दोंद्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनके इस ऋणसे मैं जन्म-जन्मान्तरमें भी उऋण नहीं हो सकता और न होना ही चाहता हूँ। भव-सरिताकी प्रबल धारामें बहते हुए मुझ पामरको उन्होंने अपनी सहज कृपासे उबार लिया और भगवत्कृपाका अधिकारी बना दिया। मेरी त्रुटियोंकी ओर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया और मेरे द्वारा उन्हींकी प्रेरणासे हुए तनिक-से भी

अनुकूल आचरणकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे मेरे बड़े भाई, सखा एवं स्वामी ही नहीं, मेरे पथ-प्रदर्शक जीवन-सर्वस्व थे और हैं। उनकी स्मृति मात्रसे हृदय भर आता है। बस, शेष जीवन श्रीभाईजी और उनके अपने श्रीराधामाधवकी स्मृतिमें बीत जायँ, यही अभिलाषा है।

गोस्वामीजी रुग्ण शय्यापर पड़े-पड़े ही कमरेकी खिड़कीसे जब-तब बाबूजीकी पावन समाधिका दर्शन कर लिया करते थे। यह समाधि इत्र-मिश्रित-पीत-मिट्टीसे पुती रहती है। महाप्रस्थान करनेके कुछ दिनों पूर्व गोस्वामीजीने समीपस्थ स्वजनोंके समक्ष अपनी अन्तिम अभिलाषा व्यक्ति करते हुए कहा– मेरे जीवनधन श्रीभाईजीकी पावन समाधिपर जो पीली मिट्टी पुती हुई है, वह मेरे प्रियतम श्रीकृष्णके पीत दुकूलका प्रतीक है तथा मेरे प्राणवल्लभकी पावन स्मृतिको सतत सजीव बनाये रहती है। मेरे शवका अन्तिम स्नान उस पवित्र मिट्टीको धोकर एकत्रित किये गये जलसे ही करवाया जाये।

परम्परा ऐसी है कि शवका अन्तिम स्नान गंगा-जलसे करवाया जाना चाहिये, परतु इन अनोखे समर्पितात्माकी अभिलाषा थी कि गंगा-जलसे स्नान कराये जानेके उपरान्त भी एक और स्नान अपने जीवनधनकी पावन समाधिके प्रसादी जलसे करवाया जाये। गोस्वामीजीने सारे जीवन वैष्णव सदाचार, धर्म- मर्यादा, साम्प्रदायिक नैष्ठिकता, कुल-परम्पराको महत्त्व प्रदान किया था, परंतु आज वे सब एक किनारे हो गये और सर्वोपरि स्थान मिला प्रीतिकी निराली रीतिको।

विदाईको समीप देखकर गोस्वामीजीने जाने-अनजाने हुई भूलोंके लिये और इच्छा-अनिच्छापूर्वक किये गये कटु व्यवहारोंके लिये सभीसे क्षमा याचना की। जिन स्वजनोंने अन्तिम रुग्णावस्थाके समय परिचर्या की थी, उनकी सेवा-भावनाको देखकर गोस्वामीजीका हृदय भर-भर आ रहा था। उन्होंने सजल नेत्रोंसे और उन्मुक्त हृदयसे सभीको आशीर्वाद दिया तथा कहा– मैं तो सर्वथा अकिञ्चन हूँ। मेरे पास इस सेवाके बदलेमें दे सकने योग्य कुछ भी नहीं है, परंतु मेरे आराध्य इस एक-एक सेवाका अनन्त गुणा पुरस्कार तुम सबको अवश्य देंगे, यह मेरे अन्तरकी अन्तिम आशीष है।

बाबा और बाबूजीमें सर्वथा अभेद माननेके कारण गोस्वामीजीने बाबाके समक्ष एक बार अपनी एक अन्तरंग अभिलाषा व्यक्त की–

जीवनके अन्तिम श्वासके समय यह शरीर आपसे संपृक्त रहे।

इस अभिलाषाको सुनकर बाबाने एक मधुर मुस्कान बिखेर दी। बाबाने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, परंतु गोस्वामीजीके इस मनोरथको अपने हृदयके कोनेमें छिपाकर रख लिया। हृदयकी गुहामें छिपाकर रखे गये इस तथ्यकी जानकारी भला किसी अन्यको कैसे हो सकती थी? अत्यधिक रुग्ण गोस्वामीजीकी स्थिति ज्यों ही गम्भीर होने लगी और ऐसा लगने लगा कि गोस्वामीजी अब जानेवाले हैं, त्यों ही दौड़कर बाबाको सूचना दी गयी। बाबा तुरंत आये। गोस्वामीजीको भूमिपर नीचे उतार लिया गया। अब कुछ ही श्वास शेष थे।

बाबाने अपने दाहिने चरणके अंगुष्ठको गोस्वामीजीके पैरोंके तलवेके निम्न भागमें एड़ीके पास भली प्रकार सटा दिया और बाबासे संपृक्तावस्थामें ही गोस्वामीजीने अन्तिम श्वास ली। भावातिरेककी गम्भीर दशामें बाबाके नयन भी अपने आप मुँद गये।

सं. २०३१ वि. वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी नृसिंह चतुर्दशी तिथि (५ मई १९७४) के दिन गोस्वामीजीके जीवनका पटाक्षेप हो गया। गोस्वामीजी इस भूतलपर लगभग ७४ वर्ष रहे। गोस्वामीजीने जो अपनी अन्तिम अभिलाषा व्यक्त की थी, उसको पूर्ण करनेके लिये बाबूजीकी पावन समाधिको प्रक्षालित करके प्रसादी जलसे उनके शवको स्नान कराकर वह स्मरणीय-वन्दनीय पाञ्चभौतिक कलेवर चिताकी पावन अग्निको अर्पित कर दिया गया।

महाप्रस्थानके कुछ समय बाद गोस्वामीजी अपने दिव्य स्वरूपसे बाबाको दिखलायी दिये थे। बाबा बतला रहे थे कि उनके उस दिव्य देहकी कान्ति अनुपम थी और उनके नेत्रोंमें अतीव प्रसन्नता नृत्य कर रही थी। गोस्वामीजीके दिव्य स्वरूपको देखकर बाबाको बड़ा आह्लाद हुआ। बाबाने एक और अन्तरंग बात बतलायी। निकुञ्जलीलामें नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीप्रियाजीकी रसमयी सेवामें श्यामला मञ्जरी सतत संलग्न रहती हैं और गोस्वामीजीकी अन्तिम परिणति उन श्यामला मञ्जरीके रूपमें ही हुई है। इस रहस्योद्घाटनने सभी स्वजनोंको परम मोद प्रदान किया। श्रीप्रिया-प्रियतमकी निकुञ्ज-लीलामें लीन पूज्य श्रीगोस्वामीजीकी जय, बार-बार जय।

* * * * *